Chapter इक्कीस

भगवान् द्वारा बलि महाराज को बन्दी बनाया जाना

इस अध्याय में बताया गया है कि भगवान् विष्णु ने किस प्रकार बलि महाराज के यश का विज्ञापन करने की इच्छा से तीसरे पग के लिए अपना वचन न निभा पाने के कारण बलि महाराज को बन्दी बना लिया।

जब भगवान् का दूसरा पग ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च लोक ब्रह्मलोक जा पहुँचा तो उनके अँगूठे के नाखून के तेज से उस लोक का सौन्दर्य घट गया। तब ब्रह्माजी ने मरीचि इत्यादि ऋषियों तथा स्वर्ग के प्रधान देवों समेत भगवान् की विनम्र स्तुति और पूजा की। उन्होंने भगवान् के चरणों का प्रक्षालन किया और सारी सामग्री से उनका पूजन किया। ऋक्षराज जाम्बवान ने भगवान् की महिमा को गुँजाने के लिए अपना बिगुल बजाया। जब बलि महाराज का सर्वस्व छिन गया तो सारे असुर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। बलि महाराज के ऐसा न करने की चेतावनी देने पर भी उन सबों ने भगवान् विष्णु के विरुद्ध अपने हथियार उठा लिये। किन्तु विष्णु के नित्य पार्षदों ने इन सबको हरा दिया और वे सब बलि महाराज के आदेशानुसार पाताललोक में चले गये। भगवान् विष्णु के वाहन गरुड़ ने भगवान् विष्णु का मन्तव्य

समझकर तुरन्त ही बलि महाराज को वरुण के पाश से बन्दी बना लिया। जब बलि महाराज इस असहाय अवस्था में पड़ गए तो भगवान् विष्णु ने उनसे तीसरे पग की भूमि माँगी। जब बलि महाराज अपना वचन पूरा न कर पाये तो भगवान् विष्णु ने उनके संकल्प तथा दृढ़ व्रत को देखते हुए उन्हें सुतललोक में स्थान प्रदान किया जो स्वर्गलोक से बढ़कर है।

श्रीशुक उवाच
सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभि-
र्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ।
मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः
सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सत्यम्—सत्यलोक; समीक्ष्य—देखकर; अब्ज-भवः—कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी ने; नख-इन्दुभिः—नाखूनों के तेज से; हत—क्षीण हुआ; स्व-धाम-द्युतिः—अपने धाम का प्रकाश; आवृतः—आच्छादित; अभ्यगात्—आया; मरीचि-मिश्राः—मरीचि जैसे मुनियों के साथ; ऋषयः—ऋषिगण; बृहत्-व्रताः—सारे के सारे परम ब्रह्मचारी; सनन्दन-आद्याः—सनक, सनातन, सनन्दन तथा सनत्कुमार जैसे; नर-देव—हे राजा; योगिनः—योगी।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब कमलपुष्प से उत्पन्न ब्रह्माजी ने देखा कि उनके धाम ब्रह्मलोक का तेज भगवान् वामनदेव के अँगूठे के नाखूनों के चमकीले तेज से कम हो गया है, तो वे भगवान् के पास गये। ब्रह्माजी के साथ मरीचि इत्यादि ऋषि तथा सनन्दन जैसे योगीजन थे, किन्तु हे राजा! उस तेज के समक्ष ब्रह्मा तथा उनके पार्षद भी नगण्य प्रतीत हो रहे थे।

वेदोपवेदा नियमा यमान्विता-
स्तर्केतिहासाङ्गपुराणसंहिताः ।
ये चापरे योगसमीरदीपित-
ज्ञानाग्निना रन्धितकर्मकल्मषाः ॥ २ ॥
ववन्दिरे यत्स्मरणानुभावतः
स्वायम्भुवं धाम गता अकर्मकम् ।
अथाङ्घ्रये प्रोन्नमिताय विष्णो-
रुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् ।
समर्च्य भक्त्याभ्यगृणाच्छुचिश्रवा
यन्नाभिपद्मेरुहसम्भवः स्वयम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

वेद—चारों वेद (साम, यजुर्, ऋग् तथा अथर्व), भगवान् द्वारा प्रदत्त मूल ज्ञान; उपवेदाः—पूरक तथा गौण वैदिक ज्ञान यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद; नियमाः—विधि-विधान; यम—संयम करने की विधियाँ; अन्विताः—ऐसे मामलों में पटु; तर्क—तर्क;

इतिहास—इतिहास; अङ्ग—वैदिक शिक्षा; पुराण—पुराण; संहिता:—संहिताएँ यथा ब्रह्म-संहिता, वेदों के पूरक ग्रंथ; ये—अन्य; च—भी; अपरे—ब्रह्मा तथा उनके पार्षदों के अतिरिक्त; योग-समीर-दीपित—योगाभ्यास की वायु से प्रज्वलित; ज्ञान-अग्निना—ज्ञान की आग से; रन्धित-कर्म-कल्मषा:—जिनके लिए कर्म का सारा दूषण रुक चुका है; ववन्दिरे—स्तुति की; यत्-स्मरण-अनुभावत:—जिनका ध्यान मात्र करने से; स्वायम्भुवम्—ब्रह्माजी का; धाम—निवास स्थान; गता:—प्राप्त किया था; अकर्मकम्—जो सकाम कर्म से प्राप्त नहीं किया जा सकता; अथ—तत्पश्चात्; अङ्घ्रये—चरणकमलों पर; प्रोन्नमिताय—प्रणाम किया; विष्णो:—विष्णु के; उपाहरत्—पूजा की; पद्म-भव:—कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी ने; अर्हण-उदकम्—जल द्वारा अर्घ्य देना; समर्च्य—पूजा करके; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; अभ्यगृणात्—उन्हें प्रसन्न किया; शुचि-श्रवा:—परम प्रसिद्ध वैदिक विद्वान; यत्-नाभि-पङ्केरुह-सम्भव: स्वयम्—जिनकी नाभि से निकले कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी।.

जो महापुरुष भगवान् के चरणकमलों की पूजा के लिए आए उनमें वे भी थे जिन्होंने आत्मसंयम तथा विधि-विधानों में सिद्धि प्राप्त की थी। साथ ही वे तर्क, इतिहास, सामान्य शिक्षा तथा कल्प नामक (प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित) वैदिक वाङ्मय में दक्ष थे। अन्य लोग ब्रह्म संहिताओं जैसे वैदिक उपविषयों, वेदों के अन्य ज्ञान तथा वेदांगों (आयुर्वेद, धनुर्वेद, इत्यादि) में पटु थे। अन्य ऐसे थे जिन्होंने योगाभ्यास से जागृत दिव्यज्ञान के द्वारा कर्मफलों से अपने को मुक्त कर लिया था। कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने सामान्य कर्म से नहीं प्रत्युत उच्च वैदिक ज्ञान द्वारा ब्रह्मलोक में निवासस्थान प्राप्त किया था। जल तर्पण द्वारा भगवान् के ऊपर उठे चरणकमलों की भक्तिपूर्वक पूजा कर लेने के बाद भगवान् विष्णु की नाभि से निकले कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की।

धातु: कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य
पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ।
स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि
लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्ति: ॥ ४॥

शब्दार्थ

धातु:—ब्रह्माजी का; कमण्डलु-जलम्—कमण्डल का पानी; तत्—वही; उरुक्रमस्य—भगवान् विष्णु का; पाद-अवनेजन-पवित्रतया—भगवान् विष्णु के चरणकमलों को धोने और इस तरह दिव्य रूप से पवित्र होने से; नर-इन्द्र—हे राजा; स्वर्धुनी—दिव्यलोक की स्वर्धुनी नामक नदी; अभूत्—हो गई; नभसि—बाह्य आकाश में; सा—वह; पतती—नीचे गिरती हुई; निमार्ष्टि—पवित्र करती; लोक-त्रयम्—तीनों लोकों को; भगवत:—भगवान् के; विशदा—इतनी पवित्र; इव—मानो; कीर्ति:—यश या यशस्वी कार्यकलाप।.

हे राजा! ब्रह्मा के कमण्डल से निकला जल अद्भुत कार्यों को करने वाले उरुक्रम भगवान् वामनदेव के चरणकमलों को धोने लगा। इस प्रकार यह जल इतना शुद्ध हो गया कि यह गंगाजल में परिणत होकर आकाश से नीचे बहता हुआ तीनों लोकों को शुद्ध करने लगा मानो भगवान् का विमल यश हो।

तात्पर्य : यहाँ हमें पता चलता है कि जब ब्रह्माजी के कमण्डल के जल से भगवान् वामनदेव के चरणकमल धुले तो गंगाजी बहने लगीं। किन्तु पंचम स्कंध में कहा गया है कि जब वामनदेव का बायाँ पाँव ब्रह्माण्ड के आवरण में घुस गया तो उससे होकर कारणार्णव सागर का दिव्य जल निकलने लगा। अन्यत्र यह भी बताया गया है कि भगवान् नारायण गंगाजल के रूप में प्रकट हुए। अतएव गंगा का जल तीन दिव्य जलों का मेल है और इस तरह गंगा तीनों लोकों को शुद्ध करने में समर्थ हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने यह विवरण दिया है।

ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समाहृताः ।
सानुगा बलिमाजह्रुः सङ्क्षिप्तात्मविभूतये ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-आदयः—ब्रह्मा इत्यादि महापुरुष; लोक-नाथाः—विभिन्न लोकों के प्रमुख देवता; स्व-नाथाय—अपने परम स्वामी को; समाहृताः—अत्यधिक आदर के साथ; स-अनुगाः—अपने अनुयायियों सहित; बलिम्—पूजा की सामग्री; आजह्रुः—एकत्र किया; सङ्क्षिप्त-आत्म-विभूतये—भगवान् को, जिन्होंने अपने निजी ऐश्वर्य का विस्तार किया था, किन्तु अब वामन रूप में घटा लिया था।

ब्रह्माजी तथा विभिन्न लोकों के समस्त प्रधान देवता अपने उन परम स्वामी भगवान् वामनदेव की पूजा करने लगे जिन्होंने अपने सर्वत्र-व्यापक रूप को छोटा करके अपना आदि रूप ग्रहण कर लिया था। उन्होंने पूजा की सारी सामग्री एकत्रित की।

तात्पर्य : सर्वप्रथम वामनदेव ने अपना विस्तार विराट रूप में किया और फिर वे अपने आदि वामन रूप में आ गये। इस तरह उन्होंने भगवान् कृष्ण जैसा ही किया जिन्होंने अर्जुन को पहले अपना विराट रूप प्रकट किया था और बाद में अपना आदि रूप ग्रहण कर लिया था। भगवान् इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर सकते हैं लेकिन उनका आदि रूप कृष्ण का होता है (*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*)। भक्त की क्षमता के अनुसार भगवान् विभिन्न रूप धारण करते हैं जिससे भक्त उनसे व्यवहार कर सके। यह उनकी अहैतुकी कृपा है। जब भगवान् वामनदेव ने अपना आदि रूप धारण कर लिया तो ब्रह्माजी तथा उनके पार्षदों ने उन्हें प्रसन्न करने के लिए पूजा की विविध सामग्री एकत्र की।

तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगन्धानुलेपनैः ।
धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलाङ्कुरैः ॥ ६ ॥
स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमाङ्कितैः ।

नृत्यवादित्रगीतैश्च शङ्खदुन्दुभिनि:स्वनै: ॥ ७॥

शब्दार्थ

तोयै:—चरणकमल धोने तथा स्नान के लिए आवश्यक जल से; समर्हणै:—भगवान् की पूजा के लिए पाद्य, अर्घ्य इत्यादि सामग्री से; स्रग्भि:—फूल की मालाओं से; दिव्य-गन्ध-अनुलेपनै:—चन्दन अगुरु से भगवान् वामनदेव के शरीर पर करने के लिए लेप के द्वारा; धूपै:—धूप के द्वारा; दीपै:—दीपकों के द्वारा; सुरभिभि:—अत्यन्त सुगन्धित; लाज—लावा से; अक्षत—अक्षत द्वारा; फल—फलों से; अङ्कुरै:—जड़ों तथा अंकुरों से; स्तवनै:—स्तुतियों से; जय-शब्दै:—जयजयकार द्वारा; च—भी; तत्-वीर्य-महिमा-अङ्कितै:—जिससे भगवान् के यशस्वी कार्य सूचित होते हैं; नृत्य-वादित्र-गीतै: च—नाच, संगीत यंत्रो के वादन तथा गीतगायन से; शङ्ख—शंख; दुन्दुभि—दुन्दुभि; नि:स्वनै:—ध्वनि से।

उन्होंने सुगन्धित पुष्प, जल, पाद्य तथा अर्घ्य, चन्दन तथा अगुरु के लेप, धूप, दीप, लावा, अक्षत, फल, मूल तथा अंकुर से भगवान् की पूजा की। ऐसा करते समय उन्होंने भगवान् के यशस्वी कार्यों को सूचित करने वाली स्तुतियाँ कीं और जयजयकार किया। इस तरह भगवान् की पूजा करते हुए उन्होंने नृत्य किया, वाद्ययंत्र बजाये, गाया और शंख और दुन्दुभियां बजाईं।

जाम्बवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजव: ।
विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ८॥

शब्दार्थ

जाम्बवान्—जाम्बवान ने; ऋक्ष-राज: तु—रीछों के राजा; भेरी-शब्दै:—बिगुल बजाकर; मन:-जव:—मनमौज में; विजयम्—विजय, जीत; दिक्षु—सारी दिशाओं में; सर्वासु—सर्वत्र; महा-उत्सवम्—महोत्सव; अघोषयत्—घोषित कर दिया।

रीछों के राजा जाम्बवान भी इस उत्सव में सम्मिलित हो गये। उन्होंने सारी दिशाओं में बिगुल बजाकर भगवान् वामनदेव की विजय का महोत्सव घोषित कर दिया।

महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया ।
ऊचु: स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिता: ॥ ९॥

शब्दार्थ

महीम्—पृथ्वी को; सर्वाम्—सारी; हृताम्—छीनी हुई; दृष्ट्वा—देखकर; त्रि-पद-व्याज-याच्ञया—केवल तीन पग भूमि माँगने के बहाने; ऊचु:—कहा; स्व-भर्तु:—अपने स्वामी; असुरा:—असुरगण; दीक्षितस्य—यज्ञ के लिए दृढ़संकल्प बलि महाराज के; अति—अत्यधिक; अमर्षिता:—यह उत्सव जिनके लिए असह्य था।

जब बलि महाराज के असुर अनुयायियों ने देखा कि उनके स्वामी ने जिन्होंने यज्ञ सम्पन्न करने का संकल्प कर रखा था। वामनदेव द्वारा तीन पग भूमि माँगे जाने के बहाने सब कुछ गँवा दिया है, तो वे अत्यधिक क्रुद्ध हुए और इस प्रकार बोले।

न वायं ब्रह्मबन्धुर्विष्णुर्मायाविनां वर: ।
द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ॥ १०॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वा—अथवा; अयम्—यह; ब्रह्म-बन्धुः—ब्राह्मण वेश में वामनदेव; विष्णुः—साक्षात् विष्णु है; मायाविनाम्—सारे ठगों में; वरः—श्रेष्ठ; द्विज-रूप—ब्राह्मण का रूप बनाकर; प्रतिच्छन्नः—ठगने के लिए वेश धारण किये है; देव-कार्यम्—देवताओं के हित के लिए; चिकीर्षति—प्रयत्न कर रहा है।

यह वामन निश्चित रूप से ब्राह्मण न होकर ठगराज भगवान् विष्णु है। उसने ब्राह्मण का रूप धारण करके अपने असली रूप को छिपा लिया है और इस तरह यह देवताओं के हित के लिए कार्य कर रहा है।

अनेन याचमानेन शत्रुणा वटुरूपिणा ।
सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अनेन—इसके द्वारा; याचमानेन—भिखारी के पद को प्राप्त; शत्रुणा—शत्रु के द्वारा; वटु-रूपिणा—ब्रह्मचारी के वेश में; सर्वस्वम्—सर्वस्व; नः—हमारे; हृतम्—ले लिया गया है; भर्तुः—स्वामी का; न्यस्त—फेंका गया; दण्डस्य—दण्ड देने की शक्ति का; बर्हिषि—अनुष्ठान का व्रत लेने के कारण।

हमारे स्वामी बलि महाराज यज्ञ करने की स्थिति में होने के कारण दण्ड देने की अपनी शक्ति त्याग बैठे हैं। इसका लाभ उठाकर हमारे शाश्वत शत्रु विष्णु ने ब्रह्मचारी भिखारी के वेश में उनका सर्वस्व छीन लिया है।

सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः ।
नानृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सत्य-व्रतस्य—सत्यसन्ध महाराज बलि का; सततम्—सदैव; दीक्षितस्य—यज्ञ सम्पन्न करने के लिए दीक्षित हुए; विशेषतः—विशेष रूप से; न—नहीं; अनृतम्—झूठ, असत्य; भाषितुम्—बोलने के लिए; शक्यम्—समर्थ है; ब्रह्मण्यस्य—ब्राह्मण सभ्यता या ब्राह्मण का; दया-वतः—दयावान्।

हमारे स्वामी बलि महाराज सदैव सत्य पर दृढ़ रहते हैं और इस समय तो विशेष रूप से क्योंकि उन्हें यज्ञ करने के लिए दीक्षा दी गई है। वे ब्राह्मणों के प्रति सदैव दयालु तथा सदय रहते हैं और कभी भी झूठ नहीं बोल सकते।

तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ।
इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचरासुराः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; अस्य—इस ब्रह्मचारी वामन का; वधः—वध; धर्मः—हमारा कर्तव्य है; भर्तुः—हमारे स्वामी की; शुश्रूषणम् च—तथा सेवा करने का तरीका भी है; नः—हमारा; इति—इस प्रकार; आयुधानि—हथियार; जगृहुः—उठा लिया; बलेः—बलि महाराज के; अनुचर—अनुयायी; असुराः—सारे असुरों ने।

अतएव इस वामनदेव भगवान् विष्णु को मार डालना हमारा कर्तव्य है। यह हमारा धर्म है और अपने स्वामी की सेवा करने का तरीका है। इस निर्णय के बाद महाराज बलि के असुर अनुयायियों ने वामनदेव को मारने के उद्देश्य से अपने-अपने हथियार उठा लिये।

ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः ।
अनिच्छन्तो बले राजन्प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥ १४॥

शब्दार्थ

ते—वे असुर; सर्वे—सभी; वामनम्—भगवान् वामनदेव को; हन्तुम्—मारने के लिए; शूल—त्रिशूल; पट्टिश—भाले; पाणयः—हाथ में लेकर; अनिच्छन्तः—इच्छा के विपरीत; बलेः—बलि महाराज की; राजन्—हे राजा; प्राद्रवन्—आगे बढ़े; जात-मन्यवः—सामान्य क्रोध के द्वारा भड़क कर।

हे राजा! असुरों का सामान्य क्रोध भड़क उठा, उन्होंने अपने-अपने भाले तथा त्रिशूल अपने हाथों में ले लिये और बलि महाराज की इच्छा के विरुद्ध वे वामनदेव को मारने के लिए आगे बढ़ गये।

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृप ।
प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥ १५॥

शब्दार्थ

तान्—उनको; अभिद्रवतः—इस प्रकार आगे बढ़ते; दृष्ट्वा—देखकर; दितिज-अनीक-पान्—असुरों के सैनिक; नृप—हे राजा; प्रहस्य—हँसकर; अनुचराः—सहयोगी; विष्णोः—भगवान् विष्णु के; प्रत्यषेधन्—मना किया; उदायुधाः—अपने हथियार ग्रहण करने को।

हे राजा! जब विष्णु के सहयोगियों ने देखा कि असुर सैनिक हिंसा पर उतारू होकर आगे बढ़े आ रहे हैं, तो वे हँसने लगे। उन्होंने अपने हथियार उठाते हुए असुरों को ऐसा प्रयत्न करने से मना किया।

नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः ।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्त्रिराट् ॥ १६॥
जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः ।
सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

नन्दः सुनन्दः—विष्णु के संगी यथा नन्द तथा सुनन्द; अथ—इस प्रकार; जयः विजयः प्रबलः बलः कुमुदः कुमुदाक्षः च विष्वक्सेनः—तथा जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष तथा विष्वक्सेन; पतत्रि-राट्—पक्षिराज गरुड़; जयन्तः श्रुतदेवः च पुष्पदन्तः अथ सात्वतः—जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त तथा सात्वत; सर्वे—सभी; नाग-अयुत-प्राणाः—दस हजार हाथियों के समान शक्तिशाली; चमूम्—सेना को; ते—उन्होंने; जघ्नुः—मार डाला; आसुरीम्—असुरों की।

नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, पतत्रिराट् (गरुड़), जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त तथा सात्वत—ये सभी भगवान् विष्णु के संगी थे। वे दस हजार हाथियों के तुल्य बलवान् थे। अब वे असुरों के सैनिकों को मारने लगे।

हन्यमानान्स्वकान्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ।
वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

हन्यमानान्—मारे जा रहे; स्वकान्—अपने सैनिकों को; दृष्ट्वा—देखकर; पुरुष-अनुचरैः—परम पुरुष के अनुचरों द्वारा; बलिः—बलि महाराज ने; वारयाम् आस—मना किया; संरब्धान्—अत्यधिक क्रुद्ध होते हुए भी; काव्य-शापम्—शुक्राचार्य के द्वारा प्रदत्त शाप को; अनुस्मरन्—याद करते हुए।

जब बलि महाराज ने देखा कि उनके अपने सैनिक भगवान् विष्णु के अनुचरों द्वारा मारे जा रहे हैं, तो उन्हें शुक्राचार्य का शाप याद आया और उन्होंने अपने सैनिकों को युद्ध जारी रखने से मना कर दिया।

हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ।
मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

हे विप्रचित्ते—हे विप्रचित्ति; हे राहो—हे राहु; हे नेमे—हे नेमि; श्रूयताम्—सुनो तो; वचः—मेरे शब्द; मा—मत; युध्यत—लड़ो; निवर्तध्वम्—यह लड़ाई बन्द करो; न—नहीं; नः—हमारा; कालः—उपयुक्त समय; अयम्—यह; अर्थ-कृत्—सफल होने का।

हे विप्रचित्ति, हे राहु, हे नेमि! जरा मेरी बात तो सुनो! तुम लोग मत लड़ो। तुरन्त रुक जाओ क्योंकि यह समय हमारे अनुकूल नहीं है।

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ।
तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यः प्रभुः—जो परम पुरुष, स्वामी; सर्व-भूतानाम्—सभी जीवों का; सुख-दुःख-उपपत्तये—सुख तथा दुख देने के लिए; तम्—उसको; न—नहीं; अतिवर्तितुम्—जीतने के लिए; दैत्याः—हे दैत्यो; पौरुषैः—मानवीय प्रयास से; ईश्वरः—परम नियन्ता; पुमान्—पुरुष।

हे दैत्यो! कोई भी व्यक्ति मानवीय प्रयासों से उन भगवान् को परास्त नहीं कर सकता जो

समस्त जीवों को सुख तथा दुख देने वाले हैं।

यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ।
स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

यः—भगवान् का प्रतिनिधि काल; नः—हम सबकी; भवाय—उन्नति के लिए; प्राक्—पहले; आसीत्—स्थित था; अभवाय—हार के लिए; दिव-ओकसाम्—देवताओं का; सः—वही काल; एव—निस्सन्देह; भगवान्—परम पुरुष का प्रतिनिधि; अद्य—आज; वर्तते—उपस्थित है; तत्-विपर्ययम्—हमारे पक्ष के विपरीत।

परम काल जो भगवान् का प्रतिनिधि है और जो पहले हमारे अनुकूल और देवताओं के प्रतिकूल था, वही काल अब हमारे विरुद्ध है।

बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः ।
सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

बलेन—बल द्वारा; सचिवैः—मंत्रियों की सलाह से; बुद्ध्या—बुद्धि से; दुर्गैः—किलों से; मन्त्र-औषध-आदिभिः—योगमंत्रों या औषधियों के द्वारा; साम-आदिभिः—राजनीति तथा अन्य ऐसे साधनों से; उपायैः च—इसी प्रकार के अन्य उपायों से; कालम्—काल जो भगवान् का प्रतिनिधि है; न—कभी नहीं; अत्येति—जीत सकता है; वै—निस्सन्देह; जनः—कोई व्यक्ति।

कोई भी व्यक्ति भौतिक बल, मंत्रियों की सलाह, बुद्धि, राजनय, किला, मंत्र, औषधि, जड़ी-बूटी या अन्य किसी उपाय से भगवान् स्वरूप काल स्वरूप को परास्त नहीं कर सकता।

भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ।
दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

भवद्भिः—तुम सारे असुरों के द्वारा; निर्जिताः—पराजित किये गये थे; हि—निस्सन्देह; एते—देवताओं के सारे सैनिक; बहुशः—बड़ी संख्या में; अनुचराः—अनुयायी; हरेः—विष्णु के; दैवेन—भाग्यवश; ऋद्धैः—ऐश्वर्य बढ़ने से; ते—वे (देवता); एव—निस्सन्देह; अद्य—आज; युधि—युद्ध में; जित्वा—जीतकर; नदन्ति—हर्ष से नाद कर रहे हैं; नः—हमें।

पहले तुम सब ने भाग्य द्वारा शक्ति प्राप्त करके भगवान् विष्णु के ऐसे अनेक अनुयायियों को परास्त किया था। किन्तु आज वे ही अनुयायी हमें परास्त करके शेरों की तरह हर्ष से दहाड़ रहे हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में हार या जीत के पाँच कारण बताये गये हैं। इनमें से दैव सबसे अधिक शक्तिमान है (*न च दैवात् परं बलम्*)। बलि महाराज इस रहस्य को जानते थे कि वे पूर्वकाल में दैव अनुकूल होने के कारण किस प्रकार विजयी हुए थे। चूँकि वही दैव अब उनके अनुकूल नहीं था

अतएव उनकी विजय की कोई संभावना नहीं थी। इस प्रकार उन्होंने अपने अनुचरों को बड़ी बुद्धिमानी से लड़ने से वर्जित किया।

एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ।
तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥ २४॥

शब्दार्थ

एतान्—देवताओं के इन सारे सैनिकों को; वयम्—हम; विजेष्यामः—जीत लेंगे; यदि—यदि; दैवम्—भाग्य; प्रसीदति—हमारे अनुकूल है; तस्मात्—इसलिए; कालम्—अनुकूल काल की; प्रतीक्षध्वम्—तब तक प्रतीक्षा करो; यः—जो; नः—हमारा; अर्थत्वाय कल्पते—पक्ष में माना जाना चाहिए।

जब तक भाग्य हमारे अनुकूल न हो तब तक हम विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। अतएव हमें उस उपयुक्त काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब हम उन्हें पराजित कर सकेंगे।

श्रीशुक उवाच
पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ।
रसां निर्विविशू राजन्विष्णुपार्षद ताडिताः ॥ २५॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पत्युः—अपने स्वामी (बलि महाराज) को; निगदितम्—जिसका इस तरह वर्णन हुआ; श्रुत्वा—सुनकर; दैत्य-दानव-यूथ-पाः—दैत्यों तथा दानवों के सेनापति; रसाम्—रसातल लोक में; निर्विविशूः—घुस गये; राजन्—हे राजा; विष्णु-पार्षद—विष्णु के अनुचरों द्वारा; ताडिताः—खदेड़े जाकर।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा! अपने स्वामी बलि महाराज के आदेश के अनुसार दैत्यों तथा दानवों के सारे सेनापति ब्रह्माण्ड के निचले भागों में प्रविष्ट हुए जहाँ उन्हें विष्णु के सैनिकों ने खदेड़ दिया था।

अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट्प्रभुचिकीर्षितम् ।
बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सूत्येऽहनि क्रतौ ॥ २६॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; तार्क्ष्य-सुतः—गरुड़ ने; ज्ञात्वा—जानकर; विराट्—पक्षिराज; प्रभु-चिकीर्षितम्—भगवान् वामनदेव की इच्छा से; बबन्ध—बन्दी बना लिया; वारुणैः—वरुण से सम्बन्धित; पाशैः—रस्सियों से; बलिम्—बलि को; सूत्ये—सोमरस पान के; अहनि—दिन; क्रतौ—यज्ञ के समय।

तत्पश्चात् यज्ञ समाप्त हो जाने के बाद सोमपान के दिन पक्षिराज गरुड़ ने अपने स्वामी की इच्छा जानकर बलि महाराज को वरुणपाश से बन्दी बना लिया।

तात्पर्य : भगवान् का नित्य संगी गरुड़ भगवान् की आन्तरिक इच्छा को जानने वाला है। बलि

महाराज की सहिष्णुता तथा भक्ति असंदिग्ध रूप से अतिश्रेष्ठ थी। सारे विश्व को बलि महाराज की महती सहिष्णुता दिखलाने के लिए गरुड़ ने उन्हें बन्दी बना लिया।

हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतो दिशम् ।
निगृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७॥

शब्दार्थ

हाहा-कारः—विलाप का कोलाहलपूर्ण नाद; महान्—अत्यधिक; आसीत्—था; रोदस्योः—अधो एवं ऊर्ध्व दोनों लोकों में; सर्वतः—सर्वत्र; दिशम्—सारी दिशाएँ; निगृह्यमाणे—दबाये जाने के कारण; असुर-पतौ—असुरों के स्वामी बलि महाराज को; विष्णुना—विष्णु द्वारा; प्रभविष्णुना—जो सर्वत्र अत्यन्त शक्तिशाली है।

जब बलि महाराज परम शक्तिशाली भगवान् विष्णु द्वारा इस प्रकार बन्दी बना लिये गये तो ब्रह्माण्ड के अधो तथा ऊर्ध्व लोकों की समस्त दिशाओं में विलाप का आर्तनाद हुआ।

तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः ।
नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥ २८॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; बद्धम्—बाँधे गये; वारुणैः पाशैः—वरुण पाश द्वारा; भगवान्—भगवान्; आह—कहा; वामनः—वामनदेव ने; नष्ट-श्रियम्—शारीरिक कान्ति से विहीन बलि महाराज से; स्थिर-प्रज्ञम्—किन्तु फिर भी अपने निर्णय पर अटल; उदार-यशसम्—अत्यन्त सुन्दर एवं विख्यात; नृप—हे राजा।

हे राजा! तब भगवान् वामनदेव अत्यन्त उदार एवं विख्यात बलि महाराज से बोले जिन्हें उन्होंने वरुणपाश से बन्दी बनवा लिया था। यद्यपि बलि महाराज के शरीर की सारी कान्ति जा चुकी थी तो भी वे अपने निर्णय पर अटल थे।

तात्पर्य : जब किसी की सारी सम्पत्ति छिन जाती है, तो निश्चय ही, उसकी शारीरिक कान्ति घट जाती है। किन्तु बलि महाराज अपना सर्वस्व छिन जाने पर भी भगवान् वामनदेव को तुष्ट करने के अपने संकल्प पर अटल थे। *भगवद्गीता* में ऐसे व्यक्ति को *स्थितप्रज्ञ* कहा गया है। शुद्ध भक्त कभी भी भगवान् की सेवा से विचलित नहीं होता, चाहे माया द्वारा कितने ही कष्ट तथा व्यवधान क्यों न आयें। सामान्यतया जिनके पास सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य होते हैं, वे विख्यात होते हैं, किन्तु बलि महाराज अपना सर्वस्व छिन जाने के कारण सदा-सदा के लिए विख्यात हो गये। यह भगवान् की अपने भक्तों पर विशेष कृपा है। भगवान् कहते हैं— *यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।* जब भगवान् अपने भक्त पर प्रथम विशेष कृपा के रूप में सर्वप्रथम उसका सारा धन हर लेते हैं। किन्तु भक्त कभी ऐसी क्षति से

विचलित नहीं होता। वह सेवा में डटा रहता है और भगवान् उसे एक सामान्य पुरुष की आशाओं से कहीं बढ़कर पुरस्कार प्रदान करते हैं।

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयासुर ।
द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

पदानि—पग; त्रीणि—तीन; दत्तानि—दिये गये; भूमेः—भूमि के; मह्यम्—मुझको; त्वया—तुम्हारे द्वारा; असुर—हे असुरराज; द्वाभ्याम्—दो पगों द्वारा; क्रान्ता—घेरी हुई; मही—सारी भूमि; सर्वा—पूर्णतया; तृतीयम्—तीसरे पग के लिए; उपकल्पय—साधन ढूँढो।.

हे असुरराज! तुमने मुझे तीन पग भूमि देने का वचन दिया है, किन्तु मैंने तो दो ही पग में सारा ब्रह्माण्ड घेर लिया है। अब बताओ कि मैं अपना तीसरा पग कहाँ रखूँ?

यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः सहोडुभिः ।
यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; तपति—चमक रहा है; असौ—सूर्य; गोभिः—प्रकाश द्वारा; यावत्—जब तक या जहाँ तक; इन्दुः—चन्द्रमा; सह-उडुभिः—अन्य तारों के साथ; यावत्—जहाँ तक; वर्षति—वर्षा करते हैं; पर्जन्यः—बादल; तावती—उतनी दूरी तक; भूः—पृथ्वी; इयम्—यह; तव—तुम्हारे अधिकार में।.

जहाँ तक सूर्य तथा तारों सहित चन्द्रमा चमक रहे हैं और जहाँ तक बादल वर्षा करते हैं, वहाँ तक ब्रह्माण्ड की सारी भूमि आपके अधिकार में है।

पदैकेन मयाक्रान्तो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ।
स्वर्लोकस्ते द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

पदा एकेन—एक पग से ही; मया—मेरे द्वारा; आक्रान्तः—आच्छादित; भूर्लोकः—समस्त भूर्लोक; खम्—आकाश; दिशः—तथा सारी दिशाएँ; तनोः—मेरे शरीर द्वारा; स्वर्लोकः—उच्च स्वर्गलोक; ते—तुम्हारे अधिकार में हैं, वे; द्वितीयेन—दूसरे पग में; पश्यतः ते—तुम्हारे देखते-देखते; स्वम्—तुम्हारा अपना; आत्मना—मेरे द्वारा।.

इन में से मैंने एक पग से भूर्लोक को अपना बना लिया है और अपने शरीर से मैंने सारा आकाश तथा सारी दिशाएँ अपने अधिकार में कर ली हैं। तुम्हारी उपस्थिति में ही मैंने अपने दूसरे पग से उच्च स्वर्गलोक को अपना लिया है।

तात्पर्य : वेदों के अनुसार सभी ग्रह पूर्व से पश्चिम की ओर घूमते हैं। सूर्य, चन्द्र तथा अन्य पाँच ग्रह जैसे मंगल और बृहस्पति एक दूसरे के ऊपर चक्कर लगाते हैं। किन्तु वामनदेव ने अपने शरीर तथा

अपने पग का विस्तार करते हुए सारे ग्रह लोकों पर अधिकार कर लिया।

प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ।
विश त्वं निरयं तस्माद्गुरुणा चानुमोदितः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

प्रतिश्रुतम्—वचन दिया गया; अदातुः—न दे सका; ते—तुम्हारा; निरये—नरक में; वासः—वासस्थान; इष्यते—संस्तुत; विश—अब प्रवेश करो; त्वम्—तुम; निरयम्—नरकलोक में; तस्मात्—इसलिए; गुरुणा—अपने गुरु द्वारा; च—भी; अनुमोदितः—अनुमोदन किया हुआ।

चूँकि तुम अपने वचन के अनुसार दान देने में असमर्थ रहे हो अतएव नियम कहता है कि तुम नरकलोक में रहने के लिए चले जाओ। इसलिए अपने गुरु शुक्राचार्य के आदेश से अब तुम नीचे जाओ और वहाँ रहो।

तात्पर्य : कहा गया है—

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।

स्वर्गापवर्ग नरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥

''जो भक्त एकमात्र भगवान् नारायण की भक्ति में लगे रहते हैं, वे जीवन की किसी भी परिस्थिति से डरते नहीं। उनके लिए स्वर्ग, मुक्ति तथा नरकलोक एकसमान हैं क्योंकि ऐसे भक्त मात्र भगवद्भक्ति में रुचि रखते हैं।'' (*भागवत* ६.१७.२८)। नारायण की सेवा में लगा हुआ भक्त सदैव सन्तुलित रहता है। वह वस्तुतः दिव्य जीवन बिताता है। भले ही ऐसा लगे कि वह स्वर्ग या नरक गया है, किन्तु वह इनमें से कहीं नहीं रहता प्रत्युत वह सदा वैकुण्ठ में रहता है (*स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते*)। वामनदेव ने सारे विश्व को मात्र यह दिखलाने के लिए कि बलि महाराज कितने सहिष्णु हैं उन्हें नरकलोक में जाने को कहा, किन्तु बलि महाराज ने आज्ञापालन में तनिक भी आनाकानी नहीं की। भक्त कभी अकेले नहीं रहता। निस्सन्देह, हर व्यक्ति भगवान् के साथ रहता है लेकिन भक्त भगवान् की सेवा में लगे रहने के कारण, किसी भौतिक अवस्था में नहीं रहता। भक्तिविनोद ठाकुर का गीत है—*कीटजन्म हओ यथा तुया दास।* वे भक्तों की संगति में एक तुच्छ कीट के रूप में जन्म लेने के लिए प्रार्थना करते हैं। चूँकि भक्त भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं अतएव जो कोई उनकी संगति में रहता है, वह भी वैकुण्ठ में निवास करता है।

वृथा मनोरथस्तस्य दूरः स्वर्गः पतत्यधः ।
प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

वृथा—किसी अच्छे फल से रहित; मनोरथः—मन की इच्छाएँ; तस्य—उसकी; दूरः—दूर; स्वर्गः—स्वर्गलोक को जाना; पतति—गिरता है; अधः—जीवन की नारकीय अवस्था में; प्रतिश्रुतस्य—जिन वस्तुओं के लिए वचन दिया गया हो; अदानेन—न दे सकने के कारण; यः—जो कोई; अर्थिनम्—भिखारी को; विप्रलम्भते—ठगता है।

जो कोई भिखारी को वचन देकर ठीक से दान नहीं देता उसका स्वर्ग जाना या उसकी इच्छा पूरी होना तो दूर रहा वरन् वह नारकीय जीवन में जा गिरता है।

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना ।
तद्व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

विप्रलब्धः—मैं ठगा गया हूँ; ददामि—तुम्हें दूँगा ऐसा वचन देता हूँ; इति—इस प्रकार; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अहम्—मैं; च—भी; आढ्य-मानिना—अपने ऐश्वर्य पर गर्वित होने के कारण; तत्—अतएव; व्यलीक-फलम्—ठगने का दुष्परिणाम; भुङ्क्ष्व—भोगो; निरयम्—नारकीय जीवन में; कतिचित्—थोड़े; समाः—वर्ष।

अपने वैभव पर वृथा गर्वित होकर तुमने मुझे भूमि देने का वचन दिया, किन्तु तुम अपना वचन पूरा नहीं कर पाये। अतएव अब तुम्हारे वचन (वादे) झूठे हो जाने के कारण तुम्हें कुछ वर्षों तक नारकीय जीवन बिताना होगा।

तात्पर्य : भौतिक जीवन का दूसरा पहलू यह सोचना है कि मैं धनी हूँ और मेरे पास प्रभूत सम्पत्ति है। यह मिथ्या प्रतिष्ठा है। हर वस्तु भगवान् की है, अन्य व्यक्ति के पास कुछ नहीं है। यह वास्तविक तथ्य है। *ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।* बलि महाराज असंदिग्ध रूप से महान् भक्त थे, किन्तु इसके पूर्व वे मिथ्या प्रतिष्ठा पाले हुए थे। अब ईश्वर की परमेच्छा से उन्हें नरकलोक जाना पड़ा, किन्तु वे वहाँ भगवान् के आदेश से गये थे अतः वे वहाँ स्वर्गलोक की अपेक्षा अधिक ठाट से रहे। भक्त सदैव भगवान् की संगति में रहकर उनकी सेवा में व्यस्त रहता है; अतएव उसे नरक या स्वर्ग वास की कोई परवाह नहीं रहती।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत ''भगवान् द्वारा बलि महाराज को बन्दी बनाया जाना'' नामक इक्कीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।